ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218 PP. NO.- 240-243

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- II, Issues-24, YEAR- April-June-2022

पं0 दीन दयाल जी का शिक्षा दर्शन

डॉ0 रामकृष्ण उपाध्याय

अध्यक्ष–अर्थशास्त्र विभाग, कुँवर सिंह महविद्यालय, बलिया, (उ0प्र0) भारत

Received-05.06.2022, Revised-09.06.2022, Accepted-12.06.2022 E-mail: dr.ramkrishna1975@gmail.com

सारांशः – *समाज और राष्ट्र को वैभवशाली बनाने के लिए, शिक्षा भाग्य रेखा के रूप में कार्य करती है। अतीत से लेकर वर्तमान तक विश्व के सभी राष्ट्रों का भाग्य और भविष्य उस देश की शिक्षा व्यवस्था ने ही निर्धारित किया है। हमारे देश में भी जब तक तक्षशीला, विक्रमशीला, नालन्दा, वल्लभी, काशी जैसे विश्वविख्यात शिक्षा के केन्द्र थे, तब तक सम्पूर्ण शिक्षा प्रणाली सांस्कृतिक मूल्यों पर आधारित थी। समाज की सभी शिक्षा शालाएं धर्मों की भौतिक एवं आध्यात्मिक अर्न्तनिहित शक्तियों के सर्वांगीण विकास के जागरण केन्द्र थे, तभी हमारा देश और समाज गौरवशाली वैभव के शिखर पर रहते हुए विश्वगुरु, सोने की चिड़िया और दूध–दही के देश के रूप में सम्मानित था। अपने वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिकी विकास के बावजूद पाश्चात्य जगत् आज भी व्यक्ति–स्वातंत्र्य और सामाजिक अनुशासन, राष्ट्रवाद और अन्तरराष्ट्रीयता अथवा भौतिक प्रगति और आध्यात्मिक उन्नति में सामंजस्य बनाने में सफल नहीं हो सका है। खण्ड–खण्ड में विचार करने की अपनी पद्धति के कारण वह भासमान विविधता में अन्तर्निहित एकता का प्रेक्षण, दर्शन एवं साक्षात्कार नहीं कर पाया।*

कुंजीभूत शब्द– वैभवशाली, शिक्षा व्यवस्था, सांस्कृतिक मूल्यों, सर्वांगीण विकास, जागरण केन्द्र, गौरवशाली वैभव,सामंजस्य।

परिणामतः वह मिथ्या मूर्तियों को पूज रहा है, दोषपूर्ण लक्ष्य निश्चित कर रहा है और नए भस्मासुरों को न केवल गढ़ रहा है अपितु प्रोन्नत भी कर रहा है। प्राविधिक विवेक के बिना उसका प्रौद्योगिकी ज्ञान अन्ततोगत्वा मानव जाति को सम्पूर्ण विनाश की ओर ले जा सकता है। भारतीय संस्कृति और शिक्षा की विशेषता जीवन और विश्व के प्रति एकात्म दृष्टि है। 'ईशावास्यमिदम् सर्वं यत्किंच जगत्याम्जगत्' तेन त्यक्तेन मुञ्जीथा मा गृध कस्यस्विद्धनम्। यहाँ मानव जीवन का लक्ष्य 'दर्शन' के प्रकाश में निश्चित किया जाता रहा है। ''सा विद्या या विमुक्तये'' पं0 दीन दयाल उपाध्याय ने भारतीय संस्कृति और शिक्षा को मानव कल्याण का मेरू माना है, ''सर्वेभवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः सर्वे भद्राणि पश्यन्तु माँ कश्चिद् दुःखभागमवेत, जिसे आपने एकात्म मानव दर्शन के रूप में प्रस्तुत कर सम्पूर्ण जगत में एक नया आयाम प्रस्तुत कर नर से नारायण का रास्ता व्यक्ति से समष्टि और समष्टि से परमेष्टि का दर्शन द्वारा तार्किक रूप से प्रस्तुत किया है।

पं0 दीन दयाल उपाध्याय जी शिक्षा को व्यष्टि और समष्टि को जोड़ने वाला सूत्र मानते हैं। राजनीतिक व आर्थिक विषयों पर चिंतन के साथ–साथ शिक्षा व्यवस्था, उसके गुण–दोष एवं सशक्त तथा कमजोर पहलुओं पर विषद चर्चा की है। उन्होंने एक ऐसी शिक्षा प्रणाली का प्रतिपादन किया जो समयानुकूल होने के साथ–साथ देशानुकूल भी हो। पं0 दीन दयाल उपाध्याय 'शिक्षा' को ही समाज का संघटक तत्व मानते हैं। उनके अनुसार ''नए घटाकों को पुराने घटकों से अपने सम्बन्ध का भान रहे तथा वे पुराने घटकों को जीवन की अनुभूति मानकर और समझकर आगे चलें तो उस समूह को समाज का नाम प्राप्त होता है। अर्थात् एक के बाद एक मानव क्षेत्रों के अपने सम्पूर्ण अनुभव को अथवा उसके सारभूत अंश को विभिन्न उपायों द्वारा प्रदान या संसर्गित करता है, तो इस प्रक्रिया में एक निरन्तर गतिमान मानव समूह की सृष्टि होती है जिसे समाज कहते हैं। यदि शिक्षा न हो तो समाज का जन्म ही न हो।'' समाज में शिक्षा के स्थान की प्राथमिकता और गरिमा का बोध कराते हुए कहते हैं, ''हमारे शास्त्रकारों के अनुसार यह ऋषि ऋण है, जिसे चुकाना प्रत्येक का कर्त्तव्य है।'' उपाध्याय जी का मानना है कि शिक्षा पर हर व्यक्ति का जन्मसिद्ध अधिकार है। समाज द्वारा इसकी व्यवस्था होनी ही चाहिए। इसे शैक्षिक लोकतंत्र कहा जा सकता है। शिक्षा का विक्रय समाज के लिए घातक है। अतः शिक्षा सुनिश्चित व निःशुल्क होनी चाहिएं बच्चों को शिक्षा देना समाज के हित में है। शिक्षा व संस्कार से वह समाज का अभिन्न घटक बनता है। जो काम समाज के हित में हो उसके लिए शुल्क लिया जाए, यह तो उल्टी बात है। शिक्षा पर हुए खर्च के महत्व को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि जैसे पेड़ लगाने और सींचने से पेड़ के फलने पर हमें फल मिलेंगे ही। शिक्षा भी इसी प्रकार का विनियोजन है। व्यक्ति शिक्षित होकर समाज और राष्ट्र के लिए काम करेगा ही। भारत में 1947 के पूर्व देशी रियासतों में कहीं भी शिक्षा के लिए शुल्क नहीं लिया जाता था। उच्चतम श्रेणी तक शिक्षा निःशुल्क थी, गुरुकुलों और आश्रमों में तो भोजन व रहने की व्यवस्था भी रहती थी। केवल भिक्षा मांगने के लिए ब्रह्मचारी समाज में जाता था। कोई भी गृहस्थ ब्रह्मचारी को खाली हाथ नहीं लौटाता था अर्थात् समाज द्वारा शिक्षा की व्यवस्था संचालित रहती थी। शासन–प्रशासन अथवा राजतंत्र का उसमें हस्तक्षेप नहीं रहता था।

उपाध्याय जी सभी के लिए निःशुल्क सर्वशिक्षा के पक्षधर थे। वे कहते थे कि शिक्षा का व्यय राज्य द्वारा होने पर भी उसका सरकारीकरण नहीं होना चाहिए। प्रत्येक क्षेत्र में शिक्षा संस्थाओं का प्रबन्ध करने के लिए शिक्षकों तथा शिक्षाविदों के

अनुरूपी लेखक/संयुक्त लेखक

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- II, Issues-24, YEAR- April-June-2022

स्वायत्त निकाय होने चाहिए। शासकीय विभाग के अन्तर्गत उसको चलाना ठीक नहीं है। सरकारी और गैरसरकारी शिक्षा संस्थाओं का भेद समाप्त कर देना चाहिए सभी क्षेत्र के शिक्षकों के वेतनक्रम मान मर्यादा व अन्य सुविधाएं ऐसी हों, जिससे योग्यतम व्यक्ति शिक्षा क्षेत्र में आने में लालयित रहें संकोच न करें। पूर्व राष्ट्रपति ए0पी0जे0 अब्दुल कलाम और सर्वपल्ली राधाकृष्णन् का भी यही विचार था कि चूंकि शिक्षक ही मानव निर्माण का जीवन्त कार्यशाला है। अतः समाज के सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति को ही शिक्षक बनना चाहिए। शिक्षा संस्थाओं को प्रबन्धकों या प्रबन्ध समितियों की निजी सम्पत्ति बनने देना कहीं से भी उचित नहीं है।

उपाध्याय जी शिक्षा व्यवस्था के सफल संचालन के लिए शिक्षाविदों, बुद्धिजीवियों, विषय विशेषज्ञों के स्वायत्तशासी आयोग द्वारा संचालन के पक्ष में थे। अधिकारों का दुरुपयोग कर शिक्षा संस्थाओं द्वारा निजी सम्पत्ति बनाना समाज के साथ दुराचरण है। हम सबका कर्तव्य है कि समाज के निर्धन, दलित, शोषित, आदिवासियों, गिरिवासियों के बीच ज्ञानदीप जलाकर शिक्षा उन्नयन के राष्ट्रीय यज्ञ में सहयोग करें। आपका मानना है कि "शिक्षा समाज में भेद निर्माण करने वाली न होकर एकात्म निम्रण करने वाली हो। भारत में चल रहे 'पब्लिक स्कूल' इस उद्देश्य के प्रतिकूल है। आवश्यकता है कि सभी शिक्षण संस्थाओं का स्तर और सोच ऊँचा उठाया जाये क्योंकि शिक्षा केवल पाठशालाओं का उपक्रम मात्र नहीं है, वरन् एक समपूर्ण सामाजिक संस्कार क्षम बनाने की सर्वोत्तम प्रक्रिया है। उनकी मान्यता है कि व्यापक अर्थों में समाज का प्रत्येक घटक ही अपने–आप में एक शिक्षक और मार्गदर्शक है। अतः समाज प्रथम शिक्षक है, द्वितीय शालेय अध्यापक और तृतीय स्वयं व्यक्ति"।

इस शिक्षक को भारतीय शास्त्रकारों ने निम्नांकित तरह से प्रतिविम्बित किया है :–

1. माता प्रथम गुरु 2. आचार्य देवोभव 3. आत्म दीपोभव

इन तीनों शिक्षकों के शिक्षा देने के अलग–अलग माध्यम है :– प्रथम संस्कार, द्वितीय–अध्यापन और तृतीय स्वाध्याय।

महात्मा गांधी की तरह पं0 दीन दयाल जी सर्वसुलभ अनिवार्य शिक्षा के पक्ष में थे। शिक्षा का माध्यम के लिए मातृभाषा को उपयोगी मानते थे। हिन्दी साहित्य के मुर्धन्य विद्वान भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने लिखा– "निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल। बिन निज भाषा ज्ञान के, मिटै न हिय को सूल।"

मातृभाषा अर्थात माँ की भाषा, जिसे बच्चा सबसे पहले माँ से सीखता है, जो बच्चे के दिल, दिमाग और दृष्टि को एक दूसरे से जोड़ता है। यह भाषा बच्चे में संस्कार का रोपड़ करता है। इससे वह नाम पाता है, पहचान पाता है, जिस पर वह गर्व करता है। मातृभाषा की समुन्नति पूरे समाज और राष्ट्र के मूल्य बदल देती है। मातृभाषा के पतन से देश की संस्कृति और संस्कारों का पतन हो जाता है। मातृभाषा राष्ट्र की पहचान का माध्यम और गौरव होता है।

एक शोध में पाया गया कि विश्व के 20 सर्वाधिक जी0डी0पी0 वाले देशों में समस्त कार्य उनकी मातृभाषा में होता है, जबकि सबसे कम जी0डी0पी0 वाले विश्व के 20 देशों की अपनी मातृभाषा में कार्य नहीं होता है। फ्रांसीसी, जर्मन और जापानी जो विश्व जनसंख्या के मात्र लगभग 2 प्रतिशत आबादी वाले देश हैं, अपनी मातृभाषा के दम पर तरक्की कर दुनिया में प्रतिष्ठित और सम्मानित हैं, जबकि मैंडरिन, स्पेनिश और इंग्लिश के बाद चौथे नम्बर पर सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषा हिन्दी, अपनी प्रतिष्ठा के लिए आज भी तड़प रही है। गांधी जी कहते थे कि विदेशी भाषा में शिक्षा ने भारतीय बच्चों को रट्टू बना दिया है, वह सृजन लायक नहीं है। रविन्द्र नाथ टैगोर जी का मानना था कि यदि ज्ञान–विद्वान को सर्वसुलभ बनाना है तो शिक्षा मातृभाषा में दिया जाए। महान वैज्ञानिक पूर्व राष्ट्रपति ए0पी0जे0 अब्दुल कलाम ने बताया कि मैं अच्छा वैज्ञानिक इसलिए बन सका क्योंकि हमने गणित ओर विज्ञान मातृभाषा में पढ़ा था।" विश्व में वर्षों से चल रहे 150 शोधों से निष्कर्ष निकाला गया कि शिक्षा मातृभाषा में दिया जाना चाहिए। यह देश के पहचान ओर गौरव का विषय होता हैं विश्व में इसकी स्वीकार्यता इसके सम्मान का सूचक होता है। जब एक भारतीय जो मारीशस में रहता था किसी ने अंग्रेजी में बधाई दिया तो उसने उस बधाई को अस्वीकार करते हुए कहा था कि इसमें मुझे गुलामी और परतंत्रता की बू आती है, कृपा कर मुझे मेरी मातृभाषा में बधाई दें। शिक्षा वही है जो आर्थिक, बौद्धिक के साथ–साथ आध्यात्मिक तीनों शक्तियों का एक साथ विकास करं। स्कूल से निकलने के बाद युवक के मन में अब मैं क्या करूं ?की स्थिति नहीं आनी चाहिए। इतना ही नहीं मातृभाषा में शिक्षा देने से मन, शरीर को शिक्षित और स्वस्थ रखने के साथ–साथ आत्मिक शक्ति भी मिलना आवश्यक है। आत्मा की शिक्षा एक बिल्कुल भिन्न विषय है। आत्मा का विकास करने का अर्थ है चरित्र का निर्माण करना, ईश्वर का ज्ञान पाना, आत्मज्ञान प्राप्त करना। इस ज्ञान को प्राप्त करने में बालकों को बहुत अच्छा मदद व प्रशिक्षण की जरूरत होती है, जो अभ्यास और साधना से प्राप्त होती है, इसके बिना दूसरा ज्ञान व्यर्थ है। उपाध्याय जी का पूर्ण विश्वास था कि शिक्षक अपने आचरण द्वारा शिष्यों की आत्मा को हिला सकता है। मैं स्वयं झूठ बोलूं और अपने शिष्यों को सच्चा बनाने की कोशिश करूं तो वह व्यर्थ ही होगा। डरपोक शिक्षक शिष्यों को निर्भिक नहीं बना सकता। व्यभिचारी शिक्षक शिष्यों को संयम कैसे सिखा सकता है?

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- II, Issues-24, YEAR- April-June-2022

उपाध्याय जी नैतिक शिक्षा की अनिवार्यता को सबसे ऊपर मानते हैं। नैतिक शिक्षा के द्वारा ही बालकों में मानवीय गुणों का विकास किया जा सकता है, इसके बिना न तो विद्यार्थी का भला होगा और न ही उसके द्वारा समाज का कुछ भला हो सकता है। शिक्षक को शालेय शिक्षा की घूरी मानते हैं। इसको स्वस्थ किए बिना कोई भी शिक्षा पद्धति समाज को अपेक्षित परिणाम नहीं देगी। अतः शिक्षा सुधार की प्रथम शर्त–शिक्षकों को पर्याप्त सम्मान तथा पर्याप्त पारिश्रमिक देना भी आवश्यक मानते हैं। इसके लिए समाज, सरकार और शिक्षक तीनों का संयुक्त उत्तरदायित्व है। आज भी दुनिया के विकसित देशों अमेरिका, जर्मन, जापान, फ्रांस जैसे देशों में शिक्षक का सम्मान सर्वोपरि है। शिक्षा के महत्व को इससे समझा जा सकता है।

दक्षिण अफ्रीका के विश्वविद्यालय के मुख्य द्वार पर लिखा है "The following message was posted for Contemplation. "Destroying any nation does not require the use of atomic bomb or the use of long range missiles..... it only requires lowering the quality of education and allowing cheeting is examinatins by the students.."

"Patients die due to the hands of such doctors.... buildings collapse at the hands of such engineers.... money is lost at the hands of such economists and accountants... humanities dies at the hands of such religious scholars..... Justice is lost at the hands of such judges the collapse of education is the collapse of nation"

शिक्षा का सर्वांगपूर्णता की प्रथम शर्त है संस्कारक्षम समाज अर्थात व्यक्ति–व्यक्ति में शिक्षा के विषय में उत्तरदायित्व की भावना आवश्यक है, परिवार, हाट बाजार, खेत खलिहान, पशु–पक्षियों, सरकारी माध्यमों के साथ सृष्टि का सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ही हमारा शिक्षालय है। उपाध्याय जी उच्च शिक्षा के विभिन्न पाठ्यक्रमों के माध्यम से विशेषज्ञ बनने के विरोधी नहीं थे लेकिन इनका मुख्य उद्देश्य अंग्रेजी माध्यम से वैज्ञानिक, तकनीकी उच्च शिक्षा ग्रहण करके ही हम संस्कारवान समाज के घटक तब तक नहीं बन सकते हैं जब तक कि शिक्षा में नैतिक तथा मानवीय गुणों के सम्यक् विकास के लिए सामाजिक संवेदनाओं से परिपूर्ण पाठ्यक्रम नहीं होगा। हमें विद्यार्थी को साहित्यकार, चित्रकार, शिल्पकार, संगीतज्ञ, वैज्ञानिक, चिकित्सक, कानूनविद सहित ब्रह्माण्ड के सम्पूर्ण ज्ञान के लिए तैयार करना ही है। विद्यार्थियों की उनकी बौद्धिक, शारीरिक क्षमताओं, अभिरूचियों के अनुसार शिक्षा के क्षेत्र में ज्ञानार्जन के अवसर देना ही है। इसके साथ ही साथ एक संवेदनशील, नैतिक गुणों से भरपूर, समाजसेवी, समर्पित मनुष्य का भी निर्माण करना है, जो सांस्कृतिक एवं दैवीय गुणों से सम्पन्न हो।

भारत सरकार की नई शिक्षा नीति–2020 आ चुकी है, लेकिन उसकी सफलता आदर्श शिक्षकों पर ही निर्भर है। अध्यापक या आचार्य कैसा होना चाहिए, इसका जो उत्तर वेदांग निरूक्त में यास्क ने दिया है, वह आज भी प्रासंगिक है। 'आचार्य' शब्द की व्याख्या करते हुए उन्होंने कहा है– 'आचार्य ' कस्मात्? आचारवान भवति, आचारं ग्राह्यति। आचिनोति अर्थान् वा।' इसका अभिप्राय है कि आचार्य वही हो सकता है, जो स्वयं सदाचार–सम्पन्न होकर शिष्य में भी सदाचार का संचार करने में समर्थ हो। स्वयं निरर्थक कामों से बचकर अपने शिष्य को भी उपादेय दिशा में बढ़ने में प्रेरित कर सके। कालिदास का मत है कि जो शिक्षक अपने ज्ञान की सार्थकता मात्र पद–प्राप्ति या जीविका प्राप्ति तक मानता है, वह वास्तव में शिक्षक न होकर व्यापारी है– 'यस्यागमः केवल जीविकायै तं ज्ञानपण्यं वणिजं वदन्ति।' कविकुल गुरु की इतनी उपादेय टिप्पणी की ओर भी किसी आधुनिक शिक्षा आयोग का ध्यान कभी नहीं गया। फलस्वरूप शिक्षा के नाम पर तरह–तरह की छोटी बड़ी दुकाने तो आये दिन खुलती–सजती रहीं, उनमें भारी शुल्क लेकर प्रमाण–पत्र भी बंटते रहे, लेकिन जिसे वस्तुतः विद्या या ज्ञान कहा जाये, ऐसी उपलब्धि छात्रों को नहीं हुई। ऐसे बहुसंख्यक निर्देश प्राचीन भारतीय पद्धति में उपलब्ध हैं लेकिन उनका लाभ, उनकी उपेक्षा के कारण, आधुनिक भारतीय शिक्षा को नहीं मिल सका।

हम सब मिलकर समग्र राष्ट्र की एक ऐसी नई शैक्षिक फिलासफी रचें जिससे कि राष्ट्र भक्ति से प्रेरित नये ऊर्जावान राष्ट्र का निर्माण हो सके। यह आचार–व्यवहार की बात है। राष्ट्रीय भावना ओर श्रद्धा की बात है। इसके लिए जीवन अर्पण करना होगा। अखण्ड साधना करनी पड़ेगी। ज्ञान, योग, कर्मयोग, भक्तियोग और ध्यान योग सबका समन्वय करना होगा। गली से गाँव तक, सड़क से लेकर संसद तक, छोटे से लेकर बड़े तक, गरीब से लेकर अमीर तक, काश्मीर से लेकर कन्याकुमारी को जाग्रत करने के लिए चर्चा, परिचर्चा, गोष्ठी, भाषण, प्रतियोगिता, स्पर्द्धा जो–जो सम्भव होगा वह सब करना होगा ताकि शिक्षा मातृभाषा–राज्यभाषा और राष्ट्रभाषा के रूप में दिया जा सके। इसके लिए यद्यपि कि मातृभाषा को राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 का अभिन्न अंग बनाया जा चुका है। ज्ञान–विज्ञान, शासन–प्रशासन, नर्सरी से उच्च शिक्षा तक, जन–जन के हाथ से लेकर हृदय तक, दिल से लेकर, दिमाग तक शिक्षा द्वारा राष्ट्र निर्माण में लगना और लगाना होगा तभी जाकर एक भारत श्रेष्ठ भारत का सपना साकार हो सके।

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- II, Issues-24, YEAR- April-June-2022

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. गोयनका, कमल किशोर (संपादक), पं0 दीन दयाल उपाध्याय, व्यक्ति दर्शन, (नई दिल्ली), दीन दयाल शोध संस्थान।
2. ठेंगड़ी दत्तोपंत, एकात्ममानववाद : एक अध्ययन, पं0 दीन दयाल उपाध्याय प्रणीत, एकात्म मानव दर्शन, दीन दयाल शोध संस्थान, नई दिल्ली।
3. दूबे राकेश : एकात्म मानववादी शिक्षा दर्शन, विद्या भारतीय संस्कृति शिक्षा संस्थान, कुरूखेत्र हरियाणा।
4. शर्मा, डॉ0 महेश चन्द्र, दीन दयाल उपाध्याय कर्त्तव्य एवं विचार, वसुधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
5. उपाध्याय दीन दयाल : राष्ट्रीय जीवन की समस्यायें, राष्ट्र धर्म, पुस्तक, प्रकाशन (1960), लखनऊ।
6. उपाध्याय, दीन दयाल : राष्ट्र चिन्तन, राष्ट्रधर्म पुस्तक प्रकाशन (1960), लखनऊ।
7. पाण्डेय, रामशकल : विश्व के श्रेष्ठ शिक्षा–शास्त्री, विनोद पुस्तक मंदिर, नवां संस्करण (2005), आगरा।
8. Mukharjee R.K. : Ancient Indian Education, Motilal Banarsidas, Third Edu. (1960) Delhi.
9. Golwalkar M.S.. : Our Nationhood Defined, Bharat Prakashan (1939), Nagpur.
10. Sri Aurbindo : On Education, Sri Aurbindo Ashram, Pondicherry.
11. चौबे, देवव्रत : पं0 दीन दयाल उपाध्याय का दर्शन, श्रुति पुस्तकालय (2020), वाराणसी, करनाल।
12. पंचजन्य दिसम्बर–जनवरी 2021–22, भारत प्रकाशन, नई दिल्ली।
13. राष्ट्रधर्म सितम्बर–2017, संस्कृति भवन, राजेन्द्र नगर, लखनऊ।
14. दैनिक जागरण, 25 सितम्बर, 2020, वाराणसी संस्करण, उ0प्र0।।
15. राष्ट्रधर्म, नवम्बर 2021, संस्कृति भवन, राजेन्द्र नगर, लखनऊ।

*****